शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A complete Periodical dedicated to Humanities & Social Science Research

मानविकी एवं समाज विज्ञान के मौलिक एवं अंतरानुशासनात्मक शोध पर केन्द्रित

Half Yearly

Vol-4, Issue-1
15 Jan-2013

कबीर काव्य में स्त्री का स्वरूप

श्रीमती सुमन

सा० १७/२२१ ए, सारंग तालाब, नक्खीघाट, वाराणसी।

www.shodh.net

Web Portal of Humanity & Social Science Research

कबीर काव्य में स्त्री का स्वरूप

- डॉ० श्रीमती सुमन

अपने विचारों में आधुनिकता के कारण कबीर मध्यकालीन भक्त कवियों में अग्रगण्य हैं। आधुनिक स्त्री विमर्श पारंपरिक स्त्री संबंधी दृष्टिकोणों से सर्वथा भिन्न है। प्रस्तुत आलेख आधुनिकता के उक्त दोनों संदर्भों में स्त्री स्वरूप की सम्यक समीक्षा का प्रतिफलन है।

विषय संकेतः- कबीर और स्त्री, भक्तिकालीन स्त्री चेतना, भक्तियुगीन साहित्य

प्रगति के पथ पर निरन्तर अग्रसर होती हुई स्त्री आज विमर्श के केन्द्र में है। यह केन्द्रीयता स्त्री को सहज ही हासिल नहीं हुई है, इसके लिए उसने निरन्तर संघर्ष किया है। उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़ने वाली इस स्त्री के सम्बन्ध में समाज का दृष्टिकोण अच्छा और सकारात्मक ही हो यह जरूरी नहीं। निरन्तर विकासोन्मुख इस स्त्री के सम्बन्ध में कई तरह के विचार है। कुछ लोग उसकी इस उन्नति से आश्चर्यचकित हैं, तो कुछ उससे सशंकित है, कुछ लोग ऐसे भी हैं जिनकी आँखों में उसके आगे बढ़ते हुए कदमों के साथ उज्ज्वल भविष्य की कामना है, कुछ लोगों का विचार यह भी है कि स्त्री का सार्वजनिक क्षेत्र में कदम रखना समाज की आन्तरिक एवं बाह्य व्यवस्था के लिए घातक है साथ ही स्त्री की अपनी मर्यादा के लिए भी। यह वही दृष्टिकोण है जो यह मानता है कि घर, परिवार समाज की मर्यादा की डोर स्त्री से ही बंधी हुई है जो उसकी निर्धारित मान्यताओं के बाहर कदम रखते ही टूट सकती है। दरअसल यह वही विचारधारा है जिसने सदियों से अपनी व्यवस्था की जंजीरो में बाँधकर स्त्री की अस्मिता को निर्जीव एवं व्यक्तित्वहीन बना रखा है। इस बंधन के बीच भी कुछ स्त्रियों ने अपने स्वतंत्र व्यक्तितव को प्रमाणित किया है।

समाज में आज हम जिस स्त्री को स्थान बनाती हुई देख रहें हैं वह वर्षो की अथक साधना एवं संघर्ष का परिणाम है। अतीत में अपनी जड़ों की तलाश करना मानव का सहज स्वभाव है, खासकर उन कालों में जो समाज की हर जकड़न से मुक्ति के लिए किए गये संघर्ष के रूप में जाने जाते हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस दृष्टिकोण से भक्तिकाल का नाम सर्वप्रथम लिया जा सकता है। भक्तिकाल में प्रायः सभी भक्त कवियों ने व्यवस्था के प्रत्येक बंधन से मुक्ति के लिए संघर्ष किया था। इन कवियों में मुक्ति का सबसे मुखर स्वर कबीर का है, किन्तु बीसवीं सदी के प्रारंभिक दशकों में आलोचना जगत में महत्त्वपूर्ण स्थान रखने वाले आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कबीर को अपेक्षित स्थान एवं महत्त्व प्रदान नहीं किया। अपनी समीक्षाओं द्वारा सूर, तुलसी और जायसी को साहित्य जगत में प्रतिष्ठा दिलाने वाले आचार्य रामचंद्र शुक्ल की दृष्टि से कबीर का कृतित्व व व्यक्तित्त्व ओझल हो गया है। प्रमुख समीक्षक नामवर सिंह कहते हैं, 'किसी कवि को साहित्य में प्रतिष्ठा दिलाने वाले थे आचार्य शुक्ल, लेकिन उन्होनें जहाँ तुलसीदास, सूरदास और जायसी पर स्वतंत्र रूप से विस्तृत समीक्षाएँ लिखी, कबीर को इस योग्य नहीं समझा। उनके लिए कबीर का महत्त्व इतिहास तक ही सीमित रहा, और इतिहास में भी कबीर के प्रति सम्मान या सहानुभूति का भाव नहीं दिखता। उनकी दृष्टि में कबीर की भाषा तो पँचमेल है ही, विचार भी पँचमेल है, प्रतिभा उनमें जरूर बडी प्रखर थी और उनकी उक्तियों में कहीं-कही विलक्षण प्रभाव और चमत्कार भी है, लेकिन कवित्व भी है- यह शुक्ल जी ने कहीं नहीं कहा है।'[1] शुक्लजी के बाद के आलोचकों में कबीर पर महत्त्वपूर्ण कार्य करने वाले आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदीजी का मुख्य लक्ष्य कबीर को साहित्य जगत में अपेक्षित स्थान दिलाना था, जिसके वे अधिकारी विद्वान थे। द्विवेदीजी के अध्ययन का मुख्य लक्ष्य कबीर के असाधारण व्यक्तित्त्व और प्रखर प्रतिभा को साहित्य जगत में स्थापित करना था। आज की सदी में स्त्री और दलित विमर्श साहित्य चर्चा के केन्द्र में है, अतः सर्वथा आधुनिक माने जाने वाले कबीर के साहित्य के अध्ययन की परम्परा की अगली कड़ी के रूप में कबीर काव्य में व्यक्त स्त्री

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A complete Periodical dedicated to Humanities & Social Science Research
मानविकी एवं समाज विज्ञान के मौलिक एवं अंतरानुशासनात्मक शोध पर केन्द्रित

Half Yearly

Vol-4, Issue-1
15 Jan-2013

श्रीमती सुमन

सा० १७/२२१ ए, सारंग तालाब, नक्खीघाट, वाराणसी।

www.shodh.net

Web Portal of Humanity & Social Science Research

संबंधी विचारों का अध्ययन अधिक प्रासंगिक एवं चुनौतोपूर्ण है। स्त्री चेतना के संदर्भ में भक्तिकालीन साहित्य में एक ओर मीरा का काव्य है जो अध्ययन की चुनौती प्रस्तुत करता है दूसरी ओर कबीर का काव्य है जिन्होने जाति-पाँति, धर्म-सम्प्रदाय के बंधनों, ऊँच-नीच के भेदक ततवों को अपने जीवन में कर्म एवं विचार दोनों से निरर्थक सिद्ध किया। ऐसे संतकवि से हमारी अपेक्षा और बढ़ जाती है कि समाज के इस महत्त्वपूर्ण किन्तु अपेक्षित अंग 'स्त्री' के विषय में कबीर का क्या विचार है, कबीर के पदों में स्त्री का क्या स्वरूप उभरता है। श्यामसुन्दर दास द्वारा सम्पादित 'कबीर ग्रंथावली' में 'विरह कौ अंग' में संकलित 45 साखियों में लगभग सभी में कबीर ने आत्मा की परमात्मा से अलग होने की पीड़ा को विरहिणी स्त्री की पीड़ा के मार्मिक स्वरूप में व्यक्त किया है।[2] परमतत्त्व से आत्मा के अलग होने की पीड़ा को व्यक्त करने के लिए कबीर ने विरहिणी स्त्री का रूपक चुना है। अध्यात्म जगत की इस पीड़ा को अभिव्यक्त करते समय संतकवि कबीर का स्त्री रूप ध्यान आकृष्ट करने वाला है। इस अंश में 'बहुत दिनों की प्रियतम की बाट जोवती विरहिणी, 'प्रिय तक न पहुँच पाने को विवश विरहिणी' 'प्रिय दर्शन कारण उठ-उठ पड़ने वाली विरहिणी', 'प्रिय के विरह शर से बिद्ध विरहिणी', 'पथिक से प्रिय का हाल पूछती विरहिणी', 'आठो याम प्रिय विरह में जलती विरहिणी' है। प्रिय वियोग में व्याकुल स्त्री के इतने रूपों को पढ़ते हुए यह भ्रम होने लगता है कि यह पद किसी पुरुष कवि द्वारा नहीं, वरन् स्त्री पक्ष से रचे हुए पद हैं। पुरुष के लिए स्त्री रूप में इन भावों की अनुभूति सहज नहीं है। घुट-घुट कर सही जाती हुई स्त्री की पीड़ा, प्रिय तक न पहुँच पाने की विवशता, आठों पहर जलने की पीड़ा का बोध स्त्री के अपने निजी अनुभव हैं। इस पीड़ा बोध को स्त्री के धरातल पर अभिव्यक्त करना पुरुष के लिए आसान नही हैं, किन्तु कबीर साधना के क्षेत्र में इस अलौकिक प्रेम को स्त्री पक्ष से सफलता के साथ साधते हैं। अलौकिक प्रिय के प्रति कबीर के विरहिणी की पीड़ा मीरा के कृष्ण बिरह की मार्मिक अनुभूतियों के अधिक निकट पड़ती है। विरहिणी की पीड़ा को या तो उसका साईं जानता है या स्वयं विरहिणी का हृदय। विरहिणी मीरा के प्रिय विरह का दुख तो वही समझ सकता है-

को विरहिणी को दुख: जाणै हो।
जो घट विरहा सोई लख है,
कै कोई हरि जन मानै हो।[3]

''निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग'' में कबीर पुन: पतिव्रता स्त्री के रूप में परमतत्त्व के प्रति अपनी एकनिष्ठता को अनेक रूपों में अभिव्यक्त करते हैं। स्वामी के प्रति एकाधिकार की भावना कबीर के निम्न साखी में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है:-

'नैना अंतरि आव तूँ, ज्यूँ हौं नैन झँपेंउँ।
नाँ हौं देखौं और कूं नाँ तुझ देखन देउँ।

अलौकिक प्रिय क प्रति एकनिष्ठता इस साखी में है:

'कबीर प्रीतड़ी तौ तुझ सौं बहु गुणियाल कंत।
जे हँसि बोलौं और सौं तो नील रँगाउँ दंत।।'

इस प्रकार की अन्य साखियों में कहीं प्रिय के लिए स्वर्ग को ठुकराकर दोजख को अंगीकार करती पतिव्रता है तो कहीं प्रिय मिलन के लिए इस भय से आशंकित स्त्री है कि वह प्रिय के मनोनुकूल आचरण कर पाएगी या नहीं। ''क्या जाने उस प्रियतम को कौन सा ढंग पसंद हो, कौन सी वेशभूषा रूचिकर हो।''[4] इनके अतिरिक्त 'कामी नर कौ अंग' में ऐसी साखियों का संकलन है जिसमें कबीर ने साधना के मार्ग में आने वाले सबसे बड़े खतरे के रूप में स्त्री का निरूपण किया है। इस अंग का नाम कामी नर कौ है, किन्तु वर्णन यहाँ कामिनी का किया गया है। यहाँ पर स्त्री नागिन है, नरक का कुण्ड है, स्त्री के प्रति आकर्षण साधक के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है, अत: उसकी निन्दा एवं तिरस्कार करके ही साधना के मार्ग पर सुरक्षित आगे बढ़ा जा सकता है। यहाँ पर स्त्री न तो प्रिय वियोग से बावली हुई विरहिणी है, न ही प्रिय के लिए स्वर्ग को

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A complete Periodical dedicated to Humanities & Social Science Research
मानविकी एवं समाज विज्ञान के मौलिक एवं अंतरानुशासनात्मक शोध पर केन्द्रित

Half Yearly

Vol-4, Issue-1
15 Jan-2013

कबीर काव्य में स्त्री का स्वरूप

श्रीमती सुमन

सा० १७/२२१ ए, सारंग तालाब, नक्खीघाट, वाराणसी।

www.shodh.net

Web Portal of Humanity & Social Science Research

भी ठुकराकर दोजख (नरक) को अंगीकार करने वाली पतिव्रता। यहाँ स्त्री विशुद्ध कामिनी है, 'नरक का कुण्ड' है 'भक्ति मुक्ति ज्ञान' तीनो सुखों का नाश करती हुई पथ की सबसे बड़ी बाधा है।

यहाँ पर नारी अपनी हो या पराई, आग वह हर स्थिति में है। इस अंग की अंतिम साखियों में कबीर 'अंधो नर को कामिनी' से बचने की चेतावनी देते हुए आगे बढ़ते हैं। स्त्री का यहाँ एक अलग ही रूप उभरता है जो पुरुष के लिए सभी प्रकार त्याज्य है। वस्तुत: आध्यात्मिक उन्नति की ओर अग्रसर साधक के लिए लौकिक बन्धनों से मुक्त होकर अलौकिक ईश्वर की प्राप्ति सहज नहीं है। लौकिक जीवन के बन्धन बड़ी बाधायें हैं जो उसे मार्ग से विचलित करती हैं, जीवन के बन्धन मायाजन्य हैं जो वास्तविक नही हैं, किन्तु उनका आकर्षण प्रबल है। जैसा कि डॉ0 माताप्रसाद गुप्त कहते हैं,' इस राम-रसायन की प्राप्ति में बाधक होते हैं विषय सुख जिनकी तृष्णा को कबीर ने माया कहा है। कबीर माया के तात्विक रूप-मात्र का उल्लेख न कर उसको कभी तो डाइन के रूप में, और कभी कामिनी के रूप में उपस्थित करते हैं।' इस प्रकार स्त्री माया के प्रतीक प्रबल आकर्षण के रूप में इन साखियों में व्यक्त है जो साधक को मायापाश में बाँधती है। यहाँ कबीर स्त्री को आत्मिक उन्नयन के मार्ग से विचलित करने वाली माया के रूप में व्यक्त करते है। साधक के लिए स्त्री के इस मायाजनित रूप के आकर्षण से बचकर परम् तत्त्व के प्रति भक्ति निवेदन दुष्कर है, जबकि अध्यात्म साधना और समाज दोनो स्तरों पर स्त्री होने से मीराबाई के लिए कृष्ण के प्रति प्रेम भाव की अभिव्यक्ति सहज भले ही हो, क्योंकि यह सहज स्त्री स्वभाव है, किन्त इस सहज स्वभाव की सामाजिक स्वीकृति सहज नहीं है। समाज में स्त्री का भक्त होना ही सबसे असहज और अस्वीकार्य तथ्य है। अत: मीरा के लिए भक्ति मार्ग की बाधा लौकिक बन्धनों के साथ समाज निर्मित विधान है जो उन्हे अपने मार्ग पर अग्रसर होने में बाधक है। इस प्रकार ग्रन्थावली के इस अंग में स्त्री 'माया के प्रतीक के रूप में सामने आती है।' 'सूरातन कौ अंग' में कबीर एक बार फिर स्त्री का रूपक ग्रहण करते हैं। इस अंग में 33, 34, 35, 36, 37 तथा 'ख-प्रति' में संकलित 32 नं0 की साखी में कबीर भक्त की एकनिष्ठता के लिए सती को उपमान बनाते हैं। देह की चिन्ता से मुक्त पति के साथ चिता पर चढ़ी हुई स्त्री की एकनिष्ठता ही भक्त के समतुल्य हो सकती है।

'सती पुकारै सलि चढ़ी, सुनी रे मीत मसाँन।
लोग बटाउ चलि गए हम तुझ रहे निदान।'

अध्यात्म क्षेत्र में कबीर समाज में समादृत सती स्त्री के जिस गुण को ग्राहय समझते हैं वह है प्रिय के प्रति एकनिष्ठता, जो इतनी गहरी है कि पति की मृत्यु के बाद देह की चिन्ता से मुक्त होकर पति की चिता के साथ जल मरने को ततपर है। 'सलि' देखकर भाग जाने वाली सती समाज में तो दोनो कुलों में हँसी का पात्र है, अध्यात्म जगत में भी स्वीकार्य नहीं है। एकनिष्ठता का यह विमर्श अध्यात्म क्षेत्र तक तो उचित है क्योंकि वह भक्त के लिए मृत्यु भय से रहित ईश्वर प्रेम की आवश्यकता है किन्तु समाज क्षेत्र में आकर यह एक ऐसी घातक रूढ़ि का रूप धारण करता है जो स्त्री के जीवन जीने के मूलभूत मानवीय अधिकार का भी हनन करता है।

'ग्रन्थावली' में 'पद' के प्रारम्भ के ही तीन पदों में कबीर सौभाग्यवती स्त्री के रूप में पुन: राम के सम्मुख प्रस्तुत होते हैं- 'जो रामदेव के साथ भाँवरे लेकर ब्याह रचाती है', रसना से रामरस का आस्वादन करती है', 'ज्यों भावै त्यों पति को प्रेम प्रीति में उलझाकर रखना चाहती है'।

'वै दिन कब आवैंगे भाई।
जा कारनि हम देह धारी है, मिलिवौ अंग लगाइ।
x x x
यह अरदास दा की सुनिये तन को तपति बुझाई।'
'बाल्हा आव हमारे गेंह रे तुम्ह बिनु दुनिया देह रे
सब को कहै तुम्हारी नारी मोकौ इहै अंदेह रे,
एकमेक हवै सेज न सोवै, तब लग कैसा नेह रे'

कबीर के इन पदों में सम्बोधन का लक्ष्य अलौकिक प्रियतम ही है, परन्तु विरह की तड़प और प्रिय दर्शन की तीव्र लालसा, अंग लगाकर मिलने की कामना तो पूरी तरह लौकिक है बल्कि वही अधिक प्रभावी भी

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A complete Periodical dedicated to Humanities & Social Science Research
मानविकी एवं समाज विज्ञान के मौलिक एवं अंतरानुशासनात्मक शोध पर केन्द्रित

Half Yearly

Vol-4, Issue-1
15 Jan-2013

श्रीमती सुमन

सा० १७/२२१ ए, सारंग तालाब, नक्खीघाट, वाराणसी।

www.shodh.net

Web Portal of Humanity & Social Science Research

है। ''जब साधक कवि को अनिर्वचनीय, आध्यात्मिक अनुभूति को व्यक्त करने के लिए शब्द नही मिलते, वाणी लाचार और पंगु सी प्रतीत लगती है और भीतर के भाव निकलने के लिए कवि में आतुरता पैदा करते हैं, तब वह साम्य के लिए लौकिक जीवन के अनुभवों का सहारा लेता है''[5] उपर्युक्त प्रथम पद में विरहिणी आत्मा की पुकार में तन-मन दोनों की पुकार है 'तन की तपति बुझाइ।'

कबीर की साखियों, पदों में स्त्री एक ओर पुरुष के लिए सभी प्रकार से त्याज्य कामिनी रूप में व्यक्त है तो दूसरी ओर उसी त्याज्य स्त्री का रूप धारण करके कबीर भगवद्प्रेम के भाव को निवेदित करते हैं। इस प्रकार के परस्पर विरोधी भावों को पढ़कर यह प्रश्न सहज ही उठता है कि नारी को नरक का कुण्ड और भक्ति मुक्ति मार्ग की सबसे बड़ी बाधा बताने वाले कवि कबीर ईश्वर भक्ति के समय स्त्री रूप ही क्यों धारण करते है। ईश्वर के समक्ष अपने भावों को स्त्री रूप मं ही सहजता से क्यो कह पाते हैं। एक ओर साधना के क्षणों में स्त्री रूप धारण करके ईश्वर के प्रति प्रेम निवेदन दूसरी ओर प्रेम के आकर्षण में बाँधने वाली वही नारी नरक का कुण्ड बन जाती है। यह अन्तर्विरोध क्यों? स्त्री यदि साधना के मार्ग की इतनी ही बड़ी बाधा ह तो साधना के क्षणो में वही स्त्री रूप धारण करने के लिए कबीर विवश क्यों होते हैं? 15वीं 16वीं सदी के सन्तों में कबीर एक ऐसे परम्पराभंजक कवि के रूप में जाने जाते हैं जिन्होने सत्य साधना के मार्ग में आने वाली समस्त असत्य धारणाओं का खण्डन किया चाहे वे सामाजिक हों या धार्मिक। समाज में प्रचलित परम्परागत धारणाओं में एक यह भी था कि नारी साधना के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है। कबीर परम्परा से प्राप्त इस संस्कार को सहज ही अस्वीकार नहीं कर पाते, वरन वह उनकी साखियों में उपदेशक के रूप में साधक को चेतावनी देते हुए व्यक्त विचारों में दिखाई पड़ता है, जहाँ वे साधक को स्त्री के आकर्षण से मुक्त करने के लिए उसे सर्वथा त्याज्य बताते हुए तिरस्कृत करते हैं। समस्त गलत मान्यताओं, असत्य धारणाओं का विरोध करने वाले संतकवि कबीर स्त्री के लिए समाज में प्रचलित इस गलत धारणा का विरोध क्यों नही करते ? क्या कबीर भी स्त्री के इसी परम्परा प्रचलित रूप को स्वीकार करते है ? इस प्रश्न का उत्तर कबीर के पदों से ही प्राप्त होता है। कबीर अपनी कविता में समाज में प्रचलित इस अवधारणा से सीधे-सीधे नही टकराते, वरन् स्त्री के जिन गुणों को अवगुण कहकर वर्जित किया जाता रहा है, उन्ही गुणों की महत्ता अध्यात्म क्षेत्र में स्त्री रूप धारण करके स्वीकार करते है। कबीर काव्य में जो स्वर आद्योपान्त गूँजता है, वह प्रेम का स्वर है। ज्ञानमार्ग द्वारा ईश्वर प्राप्ति का लक्ष्य लेकर चलने वाले कवि की कविता प्रेम के बहुसंख्यक साखियों, पदों से भरी हुई है। अलौकिक प्रिय के प्रति प्रेम निवेदित करने के लिए कबीर लौकिक स्त्री का रूपक चुनते है और इस स्त्री की विविध कामनाओं द्वारा राम के प्रति अपने प्रेम को सहजता से व्यक्त कर पाते है। उनकी अलौकिक प्रिय से मिलन की कामना मन के मिलन से ही पूर्ण नहीं होती वह 'तन रति करि मै मन रति करिहौं' 'मिलिबो अंग लगाइ' 'एकमेक हवै सेज न सोवै' जैसी तमाम पक्तियों में मन के साथ-साथ तन की मिलन कामना के रूप में व्यक्त होती है। प्रिय के प्रति निश्छल विश्वास, एकनिष्ठ समर्पण, देह की चिन्ता से मुक्त, प्रिय के लिए मृत्यु के भय से भी रहित स्त्री के इन्हीं गुणों को कबीर सहज स्वीकार करते है जो समाज द्वारा तिरस्कृत और अनादृत है। अध्यात्म जगत में स्त्री के जिन गुणों को कबीर सर्वमान्य ठहराते हैं, सामाजिक क्षेत्र में वे ही गुण अलक्षित कैसे रह जाते हैं, जबकि कबीर के 'राम' सामाजिक सरोकारों से अलग नहीं है। कबीर ऐसे ही राम के प्रति समर्पित हैं जो घट-घट वासी है, अन्दर और बाहर निरन्तर है, जो किसी भी धर्म के साँचे में फिट नहीं होता है, क्योंकि तब साँचे महत्त्वपूर्ण हो उठते है ईश्वर महत्त्वपूर्ण नहीं रह जाता। इसीलिए यह बात आश्चर्य में डालती है कि कबीर स्त्रो के शाश्वत गुणों की पहचान और उसकी स्वीकृति आध्यात्मिक स्तर पर करते है किन्तु स्त्री के लिए निर्मित परम्परागत सामाजिक साँचे को तोड़े बगैर। कबीर अपने समकालीन समाज में स्त्री की दशा से अनभिज्ञ हों यह

शोध संचयन
SHODH SANCHAYAN
ISSN 2249-9180 (Online)
ISSN 0975-1254 (Print)
RNI No.: DELBIL/2010/31292

An Internationally Indexed Refereed Research Journal & A complete Periodical dedicated to Humanities & Social Science Research
मानविकी एवं समाज विज्ञान के मौलिक एवं अंतरानुशासनात्मक शोध पर केन्द्रित

Half Yearly

Vol-4, Issue-1
15 Jan-2013

श्रीमती सुमन

सा० १७/२२१ ए, सारंग तालाब, नक्खीघाट, वाराणसी।

www.shodh.net

Web Portal of Humanity & Social Science Research

उचित नही लगता, अनेक गुणों से युक्त होने के बाद भी स्त्री समाज में निन्दा का ही पात्र थी। परम्परागत सामाजिक संस्कारों का यह साँचा जो उसके गुणों को ही दुर्गुण बनाकर प्रस्तुत करता था परम्पराभंजक कवि कबीर की दृष्टि से यह अलक्षित ही रह जाता है। अत: अध्यात्म जगत का यह स्वीकार सामाजिक जगत का स्वीकार नहीं बन पाता है। साधना के क्षणों में वरेण्य स्त्रीत्व समाज में वरेण्य नहीं हो पाता। आज आवश्यकता कबीर के आध्यात्मिक स्तर पर स्वीकृत स्त्रीत्व को सामाजिक स्तर पर स्वीकृति प्रदान करने की है, स्त्री की स्वीकृति उसके शाश्वत गुणों के साथ।स्त्री के यही शाश्वत गुण ही साधक कबीर को आत्मिक उन्नयन के मार्ग पर ले जाने में समर्थ है। इसलिए कबीर स्त्री के गुणों की स्वीकृति आध्यात्मिक क्षेत्र में करते हैं। कबीर अपने समकालीन समाज में स्त्री की दशा से अनभिज्ञ हो यह उचित नही लगता। अनेक गुणों से युक्त होने पर भी स्त्री समाज में निन्दा का ही पात्र थी, किन्तु कबीर के यहाँ स्त्री की यह निन्दा माया के प्रतीक के रूप में आती है । महत्वपूर्ण है कबीर द्वारा आध्यात्मिक स्तर पर स्त्री के गुणों की स्वीकृति जो साधक को परमतत्त्व के निकटस्थ बनाती है मनुष्य की मानसिक चेतना के उन्नयन मे सहायक होती है। वर्तमान मं स्त्री विमर्श के सन्दर्भ में यह दिशा निर्धारक तथ्य हो सकता है कि कबीर द्वारा आध्यात्म क्षेत्र में स्वीकृत स्त्री के गुणों को सामाजिक स्वीकृति प्राप्त हो सके। समाज की संरचना स्त्री या पुरुष के एकल प्रभुत्व या अधिकार से पूर्ण नहीं होती है, वह पूर्ण होती है दोनों के समान रूप से महत्त्व निर्धारण से, अब तक उपेक्षित होती रही स्त्री के प्रति समाज नियन्ताओं की संवेदनशील दृष्टि से, जो उसके गुणों की सामाजिक स्वीकृति के महत्त्वपूर्ण विधान का निर्माण करने में सहयोग कर सकें। जिससे स्त्री को उसका वास्तविक स्थान प्राप्त हो सकें जिसकी वह अधिकारिणी है। आज आवश्यकता कबीर के आध्यात्मिक स्तर पर स्वीकृत स्त्रीत्व को सामाजिक स्तर पर स्वीकृति प्रदान करने की है, स्त्री की स्वीकृति उसके शाश्वत गुणों के साथ।

संदर्भ ग्रंथ:-

1. सिंह, डॉ0 नामवर, 'दूसरी परम्परा की खोज', राज कमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2008, पृष्ठ 51
2. दास, श्यामसुन्दर, 'कबीर-ग्रंथावली', रवि प्रकाशन, वाराणसी, 2009 पृ0 74-241
3. नीलोत्पल (सम्पादक), 'मीरापदावली', प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली, संस्करण 2011
4. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, 'कबीर', राजकमल प्रकाशन, 2004, पृष्ठ 130
5. सिंह, वासुदेव, 'कबीर', अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1996

SHODH SANCHAYAN